भागवत-खण्डनम्

भागवत-खण्डनम्

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यदयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मितम्
श्रीपण्डितयुधिष्ठिरमीमांसकविहिताऽऽर्यभाषानुवादसहितम्

प्राक्कथन

श्री दयानन्द सरस्वती ने गुरुवर श्री दण्डी विरजानन्द सरस्वती से लगभग तीन वर्ष (सं० १९१७-१९२०) पर्यन्त अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि आर्षग्रन्थों का अध्ययन करके सं० १९२० वैशाख मास में आगरा में पदार्पण किया। आगरा में लगभग दो वर्ष (१९२०-१९२१) पर्यन्त स्थिति की। इस काल में ऋषि दयानन्द ने दो लघु ग्रन्थ लिखे। एक **सन्ध्या** और दूसरा **भागवतखण्डन**। सन्ध्या की पुस्तक सं० १९२० के अन्त में छपवाई और भागवतखण्डन सम्भवतः सं० १९२१ के उत्तरार्ध में लिखी।

श्रीमद् भागवत वैष्णव सम्प्रदाय का प्रधान ग्रन्थ है। अतः इसका दूसरा नाम **'वैष्णवमतखण्डन'** भी है। श्री पं० लेखराम जी ने ऋषि के जीवनचरित में इसका उल्लेख **भड़वा-भागवत** और **पाखण्डखण्डन** नाम से किया है। पं० लेखरामजी द्वारा सङ्कलित जीवनचरित पृष्ठ ७९० (प्रथम-संस्करण) पर इस पुस्तक के विषय में निम्न परिचय उपलब्ध होता है—

''**पाखण्ड-खण्डन**—यह पुस्तक सात पृष्ठ की संस्कृत-भाषा में स्वामी जी ने भागवत-खण्डन विषय पर लिखी है। सं० १९२१ व १९२२ में जब वह दूसरी बार आगरा में रहे, उसी समय का मालूम होता है। सब से पुरानी हस्तलिखित कापी इसकी ज्येष्ठ द्वितीय तिथि ९ बृहस्पतिवार सं० १९२३ तदनुसार ७ जून १८६६ में लिखी हुई पं० छगनलाल जी शास्त्री किशनगढ़ के पास विद्यमान है। अजमेर से लौट कर सं० १९२३ के अन्त में आगरा आके ज्वालाप्रकाश प्रेस में ज्वालाप्रसाद भार्गव[1] के प्रबन्ध से इसकी कई हजार कापियां छपवायीं, और प्रथम वैशाख[2] सं० १९२४ तदनुसार १२ अप्रैल सन् १८६७ में मेला हरिद्वार पर इसे बिना मूल्य वितीर्ण किया। यह बहुत समयोचित ट्रैक्ट उत्तम संस्कृत भाषा में

---

१. इसी ज्वालाप्रसाद भार्गव ने सं० १९४० (सन् १८८३) में वेदभाष्य भी छापना आरम्भ किया था। देखो—म० मुंशीराम द्वारा सम्पादित पत्रव्यवहार पृष्ठ १९२। यह किसका रचा हुआ था, यह पत्र से विदित नहीं होता।

२. अर्थात् सौर वर्ष के वैशाख मास की प्रथम तिथि (वैशाखी)।

है। यह दूसरी बार नहीं छपा।''

इस उद्धरण में सं० १९२१ व १९२२ में दूसरी बार आगरा आने का उल्लेख है, यह हमारी समझ में अशुद्ध है। क्योंकि स्वामी जी महाराज का आगरा में द्वितीय बार आगमन सं० १९२३ के उत्तरार्ध में हुआ था।

श्री पं० छगनलालजी शास्त्री की प्रति पर जो लेखन काल लिखा है, उस समय ऋषि दयानन्द राजस्थान के अजमेर आदि नगरों में भ्रमण कर रहे थे। हमारे विचार में पं० छगनलालजी की प्रति पर जो लेखन काल लिखा था, वह ऋषि दयानन्द की हस्तलिखित प्रति से प्रतिलिपि करने का काल है; न कि मूल ग्रन्थ के लिखे जाने का। पुस्तक लिखे जाने का वास्तविक काल अज्ञात है।

अजमेर (सं० १९२३) के वर्णन में बाबू देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित में लिखा है—'ब्राह्मणों ने कहा कि आप भागवत का खण्डन करते हैं। उसकी अशुद्धियां लिखकर दीजिए। स्वामी जी ने तीन-चार पत्रों पर उसकी अशुद्धियां संस्कृत में लिखकर दी थीं। भाग १, पृष्ठ ९३ द्वि० सं०।

सम्भव है यह पत्रे प्रस्तुत 'भागवत-खण्डन' के ही रहे होंगे; अथवा उसके प्रारूप के होंगे। छगनलाल शास्त्री के पास वर्तमान पुस्तक पर अङ्कित तिथि से भी इसकी पुष्टि होती है। यदि हमारा अनुमान ठीक हो, तो इस पुस्तक की रचना का श्रेय अजमेर नगर को ही है। और इसका रचना काल वही है, जो छगनलाल शास्त्री की पुस्तक पर अङ्कित है।

यह पुस्तक १८×२२ अठपेजी आकार के ७ पृष्ठों में छपी थी। इसकी एक प्रति ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त और उनके शतशः पत्रों के अन्वेषक **श्री मामराजसिंहजी** खतौली (मुजफ्फर नगर) निवासी फर्रुखाबाद से बड़े परिश्रम से ढूंढ कर लाए थे। उन्होंने यह प्रति ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन के संग्राहक और सम्पादक श्री पं० भगवद्दत्त जी को दी थी। यह प्रति विगत देशविभाजन काल (सं० २००४) में उनके अद्भुत संग्रह के साथ ही उनके गृह माडल टाउन लाहौर में रह गई। इस पुस्तक के आद्यन्त के पाठों का निर्देश श्री पं० भगवद्दत्तजी ने '**ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञानपन**' ग्रन्थ की भूमिका में किया है। हमारे ज्ञान में अब यह पुस्तक कहीं पर भी विद्यमान नहीं है। यही दशा ऋषि दयानन्द के दो ग्रन्थ आद्य **सन्ध्या** तथा **अद्वैतमतखण्डन** की है। मैं इन

तीनों ग्रन्थों की उपलब्धि के लिए १०, १२ वर्ष से प्रयत्नशील रहा हूँ, परन्तु इनकी उपलब्धि में अकृतकार्य रहा।

संवत् २०१८ वैशाख मास में अपने '**संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास**' ग्रन्थ के द्वितीय भाग के मुद्रण की व्यवस्था के लिए मेरा काशी जाना हुआ। मैं वहाँ एक दिन 'रामलाल कपूर निक्षेपनिधि' के पुस्तकालय की पुरानी पुस्तकें टटोल रहा था। उसी समय दैवात् एक पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर दृष्टि गई, उसका नाम है=''पाषंडि मुखमर्दन''। यह पुस्तक इन्द्रप्रस्थ निवासी श्री विश्वेश्वरनाथ गोस्वामी नाम के किसी पण्डित की लिखी और मुरादाबाद के सुदर्शन यन्त्रालय में लीथो की छपी हुई है। इस में २०×२६ अठपेजी आकार के ६२ पृष्ठ हैं। इस पर मुद्रण अथवा लेखन काल का निर्देश नहीं है। इस पुस्तक के लेखक ने ऋषि दयानन्द विरचित 'भागवत-खण्डन' को अक्षरशः उद्धृत करके उसका खण्डन किया है। इसलिए इस पुस्तक में सम्पूर्ण 'भागवत-खण्डन' पुस्तक सुरक्षित उपलब्ध हो गई। उसी में से निकाल कर 'भागवत-खण्डन' को पृथक् प्रकाशित कर रहा हूँ। मूल पुस्तक संस्कृत-भाषा में है। संस्कृत-भाषा से अनभिज्ञ पाठकों के लिए मैं उसका भाषानुवाद भी साथ में दे रहा हूँ।

एक बात विशेष ध्यान में रखने योग्य है। इस पुस्तक में केवल कृष्ण भागवत पुराण का ही खण्डन है। उस समय तक ऋषि दयानन्द शेष पुराणों को परम्परानुसार प्रामाणिक मानते थे। इस पुस्तक का महत्त्व केवल दो विषयों के लिए है—एक तो इससे यह स्पष्ट होता है कि ऋषि दयानन्द इस समय तक मूर्तिपूजा का खण्डन करने लग गए थे। और दूसरा है ऋषि की उपलब्ध कृतियों में इसका सबसे प्रथम कृति होना।

इस पुस्तक की रचना के कुछ काल पश्चात् ही संभवतः ऋषि दयानन्द को यह अनुभव हो गया कि मूर्तिपूजा का आश्रय वर्तमान पुराण ही है। अतः उन्हें सभी पुराणों का पूर्णतया परित्याग और खण्डन करना पड़ा। सं० १९२६ आषाढ़ मास में ऋषि दयानन्द ने कानपुर में एक प्रामाणिक पुस्तकों की सूची संस्कृत में छपवाई थी (देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, पृष्ठ १)। इस सूची में किसी भी पुराण का नाम उल्लिखित नहीं है। इतना ही नहीं, 'मनुष्यकृताः सर्वे ब्रह्मवैवर्तपुराणादयो ग्रन्थाः प्रथमं गप्पम्' पंक्ति द्वारा समस्त पुराणों को त्याज्य कहा है। इस सूची से इतना स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द सं० १९२६ से पूर्व ही वर्तमान

पुराणों को वेद-विरुद्ध मानने लग गए थे, और उनके खण्डन में प्रवृत्त हो गए थे।

इस पुस्तिका में कृष्ण भागवत के जिन अंशों का खण्डन ऋषि दयानन्द ने किया है, उनमें से कतिपय अंशों का खण्डन 'सत्यार्थप्रकाश' के (प्रथम और द्वितीय दोनों संस्करणों के) १२ वें समुल्लास में भी मिलता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के दोनों संस्करणों के उन अंशों के साथ तुलना के लिए हम उन्हें परिशिष्ट में दे रहे हैं।

इस दुर्लभ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तिका की उपलब्धि से पूर्व ही ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त श्री माननीय मामराज सिंह जी का स्वर्गवास हो गया। यदि यह पुस्तिका उनके जीवनकाल में ही उपलब्ध हो जाती, तो उन्हें अपने द्वारा बड़े प्रयत्न से ढूंढी गई और दुर्दैव से नष्ट हुई अनुपम निधि को पुनः प्राप्त करके जितनी प्रसन्नता होती, उसकी कल्पना वही व्यक्ति कर सकता है, जिसका उनके साथ गहरा सहवास रहा हो।

मुझे ऋषि दयानन्द के लुप्त हुए इस ग्रन्थ का उद्धार करने की महती प्रसन्नता है। यदि इसी प्रकार ऋषि की लुप्त हुई आद्य 'सन्ध्या' और 'अद्वैतमत-खण्डन' दोनों पुस्तिकाएं भी उपलब्ध हो जाएं, तो बड़े सौभाग्य का विषय होगा।

इस पुस्तक के सम्पादन में मुझे श्री पं० रमाशंकर भट्टाचार्य व्याकरणाचार्य, एम०ए० से पर्याप्त सहायता मिली है। इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

भारतीय-प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान
२४/२१२ रामगंज, अजमेर

विदुषां वशंवदः—
युधिष्ठिर मीमांसक

॥ ओ३म् ॥

भागवत-खण्डनम्

श्रीमद्भागवतं पुराणं नाम किमस्ति? कुतः सन्देहः? द्वे भागवते श्रूयेते—एकं देवीभागवतं द्वितीयं कृष्णभागवतं चेति। अतो जायते सन्देहः, अनयोः किमस्ति व्यासकृतमिति? देवीभागवतं श्रीमद्भागवतमस्ति व्यासकृतं च, नान्यत्। कुत एतत्? शुद्धत्वाद् वेदादिभ्योऽविरुद्धत्वाच्च। अत एव देवीभागवतस्य श्रीमद्भागवतसंज्ञा, नान्यस्य च भागवतस्य। कुत एतत्? अशुद्धत्वात् प्रमत्तगीतत्वाच्च।

किञ्च तत्—

''जन्माद्यस्य यतोऽन्वयाद् इतरश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्''।

इत्यादिनिर्मितं यत्। कुत एतदशुद्धम्? वेदादिभ्यो विरोधात्। कोऽस्ति विरोधः? सर्वमेव विरुद्धम्। कथम्?

''न नानार्थं न भिन्नार्थं नासंहृतं न चाधिकम्।
न न्यूनं कष्टशब्दं च व्युत्क्रमाभिहितं न च॥

भाषार्थ—श्रीमद्भागवत नाम का पुराण कौन-सा है? यह सन्देह क्यों हुआ? दो भागवत नाम के पुराण सुनाई देते हैं—एक देवीभागवत और दूसरा कृष्णभागवत। इसलिए सन्देह होता है कि इनमें कौन-सा व्यासकृत है? देवीभागवत ही श्रीमद्भागवत है, और वही व्यासकृत है, अन्य नहीं। यह क्यों? शुद्ध होने से और वेदादि से अविरुद्ध होने से। इसीलिए देवीभागवत की ही श्रीमद्भागवत संज्ञा है, अन्य भागवत की नहीं। यह क्यों? अशुद्ध होने से, और प्रमत्तगीत (=प्रमादी पुरुष का कहा) होने से।

वह (=अशुद्ध और प्रमत्तगीत) क्या है? जन्माद्यस्य०—इत्यादि निर्मित जो [कुछ है, वह सभी अशुद्ध] है। यह अशुद्ध क्यों है? वेदादि से विरोध होने के कारण। कौन-सा विरोध है? सब कुछ ही विरुद्ध है। कैसे? 'अनेक अर्थों वाला, भिन्न अर्थ वाला, संक्षिप्त, अधिक, न्यून, क्लिष्ट शब्द उलटे क्रम से कथित, असत्य, अतिसत्य, सूक्ष्म सत्य प्रयोजन वाला, इन

नासत्यमतिसत्यं वा सूक्ष्मं सत्यप्रयोजनम्।

एतद् दशदोषरहितं वाक्यमुच्चार्यं लेखनीयं च''॥

इत्युक्तं मार्कण्डेयपुराणे। एतद्दोषवदस्ति प्रमत्तगीतं भागवतम्, अतोऽकथनीयमश्रवणीयं च।

कथं तर्हि शुक उक्तवान् इदं भागवतं परीक्षितं प्रति **इति ? नोक्तवान्। कुतो नोक्तवान् ? शुकस्तु युद्धात् पुरा मोक्षं प्राप्तवान् इति महाभारते शान्तिपर्वणि लिखितम्। अतोऽशुद्धमेव—'शुकः परीक्षितं प्रत्युक्तवान्' इति। तर्हि छायाशुकेन प्रोक्तमिति ? स तु गृहस्थो न नग्नः। व्यास-प्रोक्तमस्ति न वा, नैवाम्बरीषशुकप्रोक्तम्।**

''नित्यं भागवतं शृणु हयग्रीव शुकप्रोक्तम्''।

'नित्यं भागवतं शृणु' इति सर्वं कथनमशुद्धमेव।

अन्येऽपि दोषा सन्ति न वा ? सन्ति बहवो दोषाः। एकदोषवतोऽपि ग्रन्थस्य प्रामाण्यं न भवति, कुतो बहुदोषवतश्च। तस्मात् स्थालीपुला-कन्यायवत् प्रमादस्तावद् द्रष्टव्यः—

दश दोषों से रहित वाक्य ही उच्चारण करना और लिखना चाहिए' ऐसा मार्कण्डेय पुराण में कहा है। इन दोषों से युक्त है, प्रमादी पुरुष का कहा हुआ भागवत। इसलिए यह कथा करने और सुनने योग्य नहीं है।

[यदि इन दोषों से युक्त भागवत है] तो कैसे 'शुक (=व्यासपुत्र) ने इस भागवत को परीक्षित के प्रति कहा' ऐसा कहा जाता है ? [शुक ने परीक्षित के लिए] नहीं कहा। क्यों नहीं कहा ? शुक तो [भारत] युद्ध से पूर्व ही मोक्ष को प्राप्त हो गया था, ऐसा महाभारत के शान्तिपर्व में लिखा है। इसलिए अशुद्ध ही है कि—'शुक ने परीक्षित के लिए [भागवत] कहा'। तो छायाशुक ने कहा [होगा] ? वह तो गृहस्थ था, संन्यासी नहीं। व्यासप्रोक्त है नहीं, न ही अम्बरीषशुक का कहा है।

नित्यं भागवतं शृणु०—इत्यादि श्लोक में 'नित्य भागवत को सुनो' कहना सारा ही अशुद्ध है।

अन्य भी दोष हैं वा नहीं ? बहुत से दोष हैं। एक दोष से युक्त ग्रन्थ का भी प्रामाण्य नहीं होता, बहुत दोष वाले का कहाँ से होगा ? इसलिए स्थालीपुलाक न्याय से प्रमाद देखने योग्य है—

''ज्ञानं परमं गुह्यं मे यद् विज्ञानसमन्वितम्।

सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया''॥

परमं गुह्यं यदस्ति ज्ञानं तद्विज्ञानमेव भवति, पुनर्विज्ञानसमन्वित-मितीदं व्यर्थमेव। एवं च चतुश्श्लोक्यशुद्धाऽस्ति।

''जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादि०''

यतः कुत इति प्रष्टव्यः ? कर्मणो वा कालाद्, आहोस्विद् ईश्वराद् वा कामाद् आहोस्वित्प्रकृतेर्वा ब्रह्मणः। किञ्चिदपि पूर्वं प्रकृतं न दृश्यते। अत एव सर्वमशुद्धं कथनम्।

''भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिस्तव''।

वसिस्सम्प्रसारणी **इति महाभाष्यम्।**[1]

संवत्सरोषितो भिक्षुः,

प्राप्य पुण्य-कृताँल्लोकान् उषित्वा शाश्वतीः समाः[2] **इत्युदाहरणाद् 'विप्रवसित' इत्यशुद्धमेव।**

''कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः''।

ज्ञानं परमं गुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्०—यहाँ जो परम गुह्य ज्ञान होता है, वह विज्ञान ही होता है। अतः पुनः 'विज्ञानसमन्वितम्' (=विज्ञान से युक्त) यह कथन व्यर्थ है। इसी प्रकार चतुःश्लोकी (=चारों श्लोक) अशुद्ध है।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयात्०—यहां 'यतः' (=जिससे) पद का अभिप्राय प्रष्टव्य है—कर्म से अथवा काल से, अथवा ईश्वर से वा काम से, अथवा प्रकृति से वा ब्रह्म से ? इस से पूर्व कुछ भी प्रकृत (=प्रकरण निर्दिष्ट) नहीं है। इसलिए यह सब कथन अशुद्ध है।

भिक्षुभिर्विप्रवसिते०—'वस' [निवासे] धातु सम्प्रसारण कार्य वाली है, ऐसा महाभाष्य में कहा है। संवत्सरोषितः०; प्राप्य....... उषित्वा० आदि उदाहरणों [में 'उषित' पद का प्रयोग होने] से 'विप्रवसितः' पद अशुद्ध ही है ['विप्रोषितः' प्रयोग होना चाहिये]।

कथितो वंशविस्तारो—प्रथने वावशब्दे इस [पाणिनीय नियम

---

१. ७.२.१०॥ २. गीता ६.४१॥ ३. भागवत १०.१.१॥

प्रथने वावशब्दे[४] **शब्दोपाधौ विस्तरः, अन्यत्र विस्तार एव। कोऽस्ति शब्दोपाधिः ? कथनश्रवणे।**

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन, भूयः कथय०;[५]
विभूतेर्विस्तरो मया;[६]
नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे;[७]
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु;[८]
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम।

एवं सति 'कथितो वंशविस्तारो भवता' **इत्यशुद्धमेव।**

''**निगमकल्पतरोर्गलितम्**''[९] इत्यादि।

अत्र वेदनिन्दा कृता हि। पतितम्, **इति वक्तव्ये** 'गलितम्' **इत्यशुद्धम्। एका षष्ठी, द्वे पञ्चम्यौ वाऽत्राशुद्धमेव।** 'शृणुत' **इति वक्तव्ये** 'पिबत' **इत्यप्यशुद्धमेव।**

**''नेमं विरञ्चिर्न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप मुक्तिदात्''॥**[१०]

से] शब्द अभिधेय होने पर ''विस्तर'', और अन्यत्र ''विस्तार'' [शब्द ही साधु होता है]। यहाँ कौन-सी शब्दोपाधि है ? कथन और श्रवण [यहाँ सोमसूर्यवंश का कथन और श्रवण इष्ट है, अतः विस्तार शब्द का प्रयोग अशुद्ध है]। विस्तरेणात्मनो०; विभूतेर्विस्तरो मया; नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे; दैवो विस्तरशः प्रोक्त०; निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद्० [आदि गीता के श्लोकों में ''विस्तर'' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है, इसलिए] ऐसा प्रयोग होने से 'कथितो वंशविस्तारो०' [में ''विस्तार'' शब्द का प्रयोग] अशुद्ध ही है।

निगमकल्पतरो०—इस श्लोक में वेद की निन्दा की है। पतितम् (=गिरा हुआ) ऐसा कहने के स्थान में गलितम् (=गला हुआ) कहना अशुद्ध है। एक षष्ठी [=निगमकल्पतरोः' में] अथवा दो पञ्चमी [=निगमकल्परोः शुकमुखात्] का प्रयोग अशुद्ध है। 'शृणुत' (=सुनो) ऐसा कहने के स्थान में 'पिबत' (=पीओ) का प्रयोग भी अशुद्ध है।

नेमं विरञ्चिर्न०—इसमें एक नकार सार्थक है, और दो अनर्थक हैं।

४. अष्टा० ३.३.३३॥ ५. गीता १०.१८ ६. गीता १०.४०॥ ७. गीता १०.१९
८. गीता १६.६॥ ९. भागवत १.१.३॥ १०. भागवत १०.९.२०॥

अत्रैको नकारो सार्थकः, द्वावनर्थकौ स्तः। निन्दा च कृता ब्रह्मादीनां देवक्यादीनां च।

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभपादारविन्दमुखाच्छ्वपदं वरिष्ठम्।[११]

अत्र ब्राह्मणनिन्दा कृता। 'अव्यक्तं व्यक्तमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धय'[१२] **अस्माद् विरुद्धत्वादशुद्धोऽपि।**

''क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्।[१३]**''**

अत्र वेदविहितकर्मकर्तॄणां निन्दा कृता, अर्थाद् वेदानामपि। नास्तिको वेदनिन्दकः[१४] **इत्युक्तं मनुना। अत एवायं भागवतस्यास्य कर्त्ता नास्तिकः।**

''यद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि''।[१५]

असम्बद्धोऽयं श्लोकः।

व्यासनारदसंवादे व्यासस्यापि निन्दा कृता—व्यासः शोकातुरोऽ-

तथा इस में ब्रह्मादि देवों और देवकी आदि की निन्दा की है।

विप्राद् द्विषड्गुणयुताद्०—इस में ब्राह्मणों की निन्दा की है। तथा 'मूर्ख लोग मुझ अव्यक्त को व्यक्त (=प्रकट) हुआ मानते हैं,' इस [गीता के वचन से] विरुद्ध होने से अशुद्ध भी है।

क उत्तमश्लोक०—इस श्लोक में वेदविहित कर्मों के करने वालों की निन्दा की है। अर्थापत्ति से वेद की भी निन्दा है। 'वेदनिन्दक नास्तिक होता है', यह मनु ने कहा है। इसलिए यह इस भागवत का कर्ता नास्तिक है।

यद्वाग्विसर्गो०—यह श्लोक असम्बद्ध है।

व्यास और नारद के संवाद में व्यास की भी निन्दा की है कि—**व्यासजी शोकातुर हो गये थे, वहाँ नारद मुनि पहुँचे और उन्होंने**

११. भागवत ७.९.१०॥ १२. गीता ७.२४॥
१३. भागवत १०.१.४॥ १४. मनुस्मृति २.११॥
१५. भागवत १-५.११॥

भूत्,[१६] तत्र नारद आगतः, पुनर्नारदेन बोधित[१७] इति। **व्यासस्तु नारायणावतारस्तस्य कथं शोकः सम्भवेत्?**

भस्मासुरकथायां[१८] शिवस्यापि निन्दा कृता—'भस्मासुरभयाच्छिवः कैलाशं विहाय वनं गतवान्, पुनर्विष्णुना रक्षितः' **इति। कस्मादपि त्रैलोक्ये भयं न भवति शिवस्य। यदि कश्चिद् ब्रूयाद् दत्तवराय भस्मासुराय दण्डं न दत्तवान्, तर्हि रावणाय दत्तवराय शिवेन दण्डः कथं दत्तः? यस्य क्रोधलेशेन सर्वं पञ्चभूतात्मकं जगद् भस्मीभूतं भवति, तस्य भयं कर्त्तुं कः समर्थः पुमान् भवेत्?**

बाणासुरकथायामपि[१९] शङ्करस्य निन्दा कृता—'कृष्णेन शङ्करः पराजितः' **इति। कोऽपि शङ्करं पराजेतुं समर्थो नास्ति।**

गृहस्थानामपि निन्दाकृता कपोतगुरुकरणकथायाम्[२०]—गृहस्थाश्रमोऽश्रेष्ठ' इति।

व्यासजी का सन्देह दूर किया। व्यासजी नारायण के अवतार [कहे गये हैं, तब] उन्हें शोक कैसे हो सकता है?

भस्मासुर कथा में शिव की भी निन्दा की है कि—**भस्मासुर के भय से शिव कैलाश छोड़ कर वन चले गये, फिर विष्णु ने उनकी रक्षा की।** शिव को किसी से तीनों लोकों में भय नहीं हो सकता। यदि कोई कहे कि भस्मासुर को वर देने के कारण शिव ने दण्ड नहीं दिया, तो वर दिए हुए रावण को शिव ने क्यों दण्ड दिया? जिस शिव के तनिक क्रोध से सारा पञ्चभूतात्मक जगत् भस्म (=प्रलय को प्राप्त) हो जाता है, उसको भयभीत करने में कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है?

बाणासुर की कथा में भी शङ्कर की निन्दा की है कि—'**कृष्ण ने शङ्कर को हरा दिया।**' कोई भी शङ्कर को पराजित करने में समर्थ नहीं है।

गृहस्थियों की भी कपोत-गुरुकरण (=कबूतर को गुरु बनाना) कथा में निन्दा की है कि—'**गृहस्थाश्रम बुरा है।**' किन्तु—

---

१६. भागवत १.४.३२॥ १७. भागवत १.५ अ० ६॥
१८. भागवत १०-८८ अ०॥ १९. भागवत १०.६३ अध्याय॥
२०. भागवत १०.७.३३॥

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥[२१]

श्रेष्ठ एव गृहाश्रमो व्यवहारे। अतोऽश्रेष्ठ इति कथनं यत् तत्प्रमत्तगीतमेव।

कृष्णस्यापि निन्दा कृता रासमण्डलचीरलीलाकथायाम्[२२]—'परस्त्रीभिर्लीलां कृतवान्, नग्नदारा दृष्टवांश्चेति'।

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च शरीरं त्रिविधं स्मृतम्॥[२३]
पापमिति शेषः।
नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम्।[२४]

इत्याह भगवान् मनुः। अस्माद्विरोधाल्लोकविरोधाच्च प्रमत्तगीतमेतत्।

आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम्।
किमभिप्राय एतन्नः संशयं छिन्धि सुव्रत॥[२५]

'**जैसे छोटी बड़ी नदियाँ समुद्र में पहुँच कर स्थिर हो जाती हैं, वैसे ही सब आश्रमी** (=ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, संन्यासी) **गृहस्थ में ही आश्रय को प्राप्त होते हैं**' [मनु के वचन के अनुसार] व्यवहार में गृहाश्रम श्रेष्ठ है, उसे बुरा बताना प्रमादी पुरुष का कथन है।

कृष्ण की भी रासमण्डल और चीरहरण लीला में निन्दा की है कि—'**पराई स्त्रियों के साथ लीला की, और नङ्गी स्त्रियों को देखा।**'

किन्तु 'विना दिए पदार्थों को ग्रहण करना, विधान के विना हिंसा करना, पराई स्त्रियों का सेवन करना, तीन प्रकार का शारीरिक पाप कहा गया है।' और—'**मुख से अग्नि को न फूँके, नङ्गी स्त्रियों को न देखे**' ऐसा मनु ने कहा है। [मनुस्मृति के साथ] विरोध होने से तथा लोक से विरुद्ध होने से [उक्त कथायें] प्रमादी पुरुष की कही हुई हैं।

आप्तकामो यदुपतिः०—इस श्लोक में भी कृष्ण की निन्दा की है।

---

२१. मनुस्मृति ६.९०॥ २२. भागवत १०.२९-३३ अ०॥
२३. मनुस्मृति १२.७॥ २४. मनुस्मृति ४.५३॥ २५. भागवत १०.२३.२९

अत्राऽपि कृष्णस्य निन्दा कृता। सर्वज्ञः कृष्णः कदाचिज्जुगुप्सितं, कर्म न कुर्यात्।

सुभद्राहरणकथायां कृष्णार्जुनसुभद्राणां निन्दैव कृता[२६]—'कृष्णः कपटरूपिणमर्जुनं महात्मास्तीति कथितवान्' **इति**; अर्जुनः कपटरूपं कृतवान् इति; सुभद्राऽपि निन्दितं कर्म कृतवती' **इति**।

इन्द्रस्यापि गोवर्धनोद्धरणकथायां निन्दा कृता[२७]—इन्द्रो लज्जितो बभूव **इति**।

अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणां महात्मनां निन्दैव कृता सप्ताहोत्स्थान-कथायाम्[२८]—'तेषां मध्ये एकोऽपि परीक्षितं समाधातुं समर्थो नेति।'

ब्रह्मणोऽपि वत्सहरणहंसावतरणकथायां[२९] **निन्दैव कृता**—'अज्ञानी ब्रह्मा' **इति**।

ततः पुष्करतः सृष्टस्सर्वज्ञो मूर्तिमान् प्रभुः।
ब्रह्मा वेदमयः साक्षात् प्रजापतिरनुत्तमः॥

सर्वज्ञ कृष्ण कभी निन्दित कर्म नहीं कर सकता।

सुभद्राहरण कथा में कृष्ण, अर्जुन और सुभद्रा की निन्दा की है कि—**'कृष्ण ने कपट रूपधारी अर्जुन को महात्मा बताया, अर्जुन ने कपट रूप धारण किया, और सुभद्रा ने भी निन्दित कर्म किया।'**

गोवर्धन-उद्धरण कथा में इन्द्र की भी निन्दा की है कि—**'इन्द्र लज्जित हो गया।'**

सप्ताहोत्स्थान कथा में अठासी सहस्र ऋषि-महात्माओं की निन्दा की है कि—**'उनमें से एक भी परीक्षित की शङ्का का समाधान करने में समर्थ नहीं हुआ'।**

वत्सहरण और हंसावतरण कथा में ब्रह्मा की भी निन्दा की—**'अज्ञानी ब्रह्मा'** ऐसा कहा। [किन्तु यह महाभारत के] 'पश्चात् कमलरूपा पृथिवी के निष्पादन के अनन्तर उत्पन्न किया सर्वज्ञ शरीरधारी प्रभु ब्रह्मा को, जो साक्षात् वेदमय और श्रेष्ठतम प्रजापति था' इस वचन से विरुद्ध होने से [भागवत का ब्रह्मा को अज्ञानी कहना] प्रमादी पुरुष का कथन है।

---

२६. भागवत १०.८६.५,३,७॥ २७. भागवत १०.२५, २४॥
२८. भागवतमहात्म्य ५.४१॥ २९. भागवत १०.१३-१४, ११.१३.१९॥

इति महाभारतविरोधात् प्रमत्तगीतमेतत्।

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्॥[३०]

महाभारताद् विरुद्धं यत्तन्न व्यासप्रोक्तमिति महाभारते। इदं तु भागवतं महाभारताद् विरुद्धमेवास्ति तस्मात् प्रमत्तगीतमेव।

''वन्दे महापुरुषचरणारविन्दम्''[३१]

द्यां मूर्धानं यस्य विप्रा वदन्ति
खं वै नाभिं सोमसूर्यौ च नेत्रे।
दिशः श्रोत्रे यस्य पादौ क्षितिश्च
ध्यातव्योऽसौ सर्वभूतान्तरात्मा॥ १॥[३२]

यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ २॥[३३]

'धर्म अर्थ काम और मोक्ष के विषय में हे भरतर्षभ! जो यहाँ (=महाभारत में कहा गया) है, वही अन्यत्र (=अन्य ग्रन्थों में) है, जो यहाँ नहीं है, वह कहीं नहीं है'। [इस वचन के अनुसार] महाभारत से जो विरुद्ध है, वह व्यास जी का कहा नहीं है, ऐसा महाभारत में [कहा है]। वह भागवत महाभारत से विरुद्ध ही है इसलिए प्रमत्तगीत है।

'वन्दे महापुरुष०—'प्रणाम करता हूँ हे महापुरुष! तुम्हारे चरणार-विन्दों को' यह कथन भी—

द्यां मूर्धानम्०—द्युलोक को जिसका शिर विप्र लोग कहते हैं, आकाश को नाभि, चन्द्र-सूर्य को दोनों नेत्र, दिशाओं को श्रोत्र, और जिसके पैर पृथिवी [कहे जाते हैं], जो ध्यान करने योग्य है, वह सब भूतों का अन्तरात्मा है।

यद्वाचा०—जो वाणी से कहा नहीं जा सकता, जिसकी शक्ति से वाणी बोलती है, उसी को ब्रह्म तू जान। यह ब्रह्म नहीं है जिसकी तू उपासना करता है।

---

३०. महाभारतआदिपर्व ६२.५३॥ ३१. भागवत ११.५.३३,३४॥
३२. वायुपुराण ९.१२०॥ ३३. केनोपनिषद् १-४॥

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ३॥[३५]

इत्यादिभ्यः श्रुतिभ्यो विरुद्धं चरणारविन्दवन्दनादिकमेव। अतोऽ-कथनीयमश्रवणीयं चेदं प्रमत्तगीतं भागवतम्।

पूर्वापरविरुद्धमप्यस्ति—

नृसिंहेन प्रह्लादाय वरो दत्तः—'एकविंशतिपित्राद्यास्तव मोक्षं गच्छन्तु।'[३५] **पुनरुक्तं प्रमत्तेन—**'तावेव रावणकुम्भकर्णौ बभूवतुः,[३६] पुनस्तावेव शिशुपालदन्तवक्रौ बभूवतुः''[३७] **इति च विरुद्धमेव।**

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्।[३८]

इति ब्रह्मणे वरो दत्तो नारायणेन। पुनरुक्तम्—'ब्रह्मा मोहितो भूत्वा वत्सहरणं कृतवान्'[३९] इति विरुद्धमेव।

'कृष्णो नग्नां बाणासुरमातरं न दृष्टवान्'[४०] **पुनरुक्तं प्रमत्तेन—चीर-**

यन्मनसा०—जो मन से विचारा नहीं जा सकता, जिससे मनन शक्ति को प्राप्त कर मन विचारता है, उसी को ब्रह्म तू जान। ब्रह्म यह नहीं है जिसकी तू उपासना करता है।

इत्यादि श्रुतियों से विरुद्ध ही है, चरणारविन्द का वन्दन आदि। इसलिए यह प्रमत्तगीत भागवत कहने और सुनने योग्य नहीं है।

पूर्वापर विरुद्ध भी है—

नृसिंह ने प्रह्लाद को वर दिया—**'तेरे २१ इक्कीस पितादि मोक्ष को प्राप्त हों'।** प्रमादी ने फिर कहा—**'वे [हिरण्याक्ष-हिरण्यकश्यप] ही रावण और कुम्भकर्ण हुए, और पुनः वे ही शिशुपाल और दन्तवक्र हुए'** यह कथन परस्पर विरुद्ध ही है।

भवान् कल्प०—'आप कल्प=सृष्टि और विकल्प=प्रलय में कभी मोह को प्राप्त नहीं होते'। नारायण ने ब्रह्मा को ऐसा वर दिया। पुनः कहा—**'ब्रह्मा ने मोहित होकर [गोपों की गौवों के] बछड़ों का हरण किया'** यह कथन परस्पर विरुद्ध ही है।

---

३४. केनोपनिषद् १-५॥ ३५. भागवत ७.१०.१८॥ ३६. भागवत ७.१०.३६
३७. भागवत ७.१७.३८॥ ३८. भागवत २.९.३६॥
३९. भागवत १०.१४.१०॥ ४०. भागवत १०.६३.२०,२१

लीलां कृतवान्[४१] **इति विरुद्धमेव।**

भस्मासुरकथायां शिवस्य निन्दां[४२] **कृत्वा पुनर्विषपानकथायां** 'भवानेव विष्णवादीनामीश्वरः'[४३] **इति विरुद्धमेव।**

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः **इति श्रुतेः;** नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते[४४] **इति स्मृतेश्च। एवं सति** 'भक्तिरेव मोक्षदात्री'[४५] **इति वेदादिभ्यो विरुद्ध-मेव।**

अतः कुग्रन्थस्य भागवताख्यस्यास्य कर्ता मूर्ख एव। अस्मात् कारणात् सुखेप्सुभिः कदाचिदिदं प्रमत्तगीतं न कथनीयं न श्रोतव्यं चेति सिद्धान्तः। ये तु लोभाच्छ्रावयन्ति मूर्खत्वाच्छृण्वन्ति ते वै नरके पतिष्यन्ति। ये प्रमत्तगीतमिदं भागवतं श्रावयन्ति शृण्वन्ति च, ते सर्वे पाषण्डिनः अतएव महापातकिनः सन्ति। यश्च कथितवान् वोपदेवः, सोऽपि पाषण्डी महापातकी चास्ति। अत एव प्रमत्तगीतस्यास्य

'कृष्ण ने बाणासुर की नङ्गी माता को नहीं देखा'। पुनः कहा प्रमादी ने—**'चीरहरण लीला की'** (उसमें स्नान करती हुई स्त्रियों के वस्त्र उठा लिए और वस्त्र लेने के लिए उनको नङ्गी बाहर आने पर बाध्य किया)। यह कथन परस्पर विरुद्ध ही है।

भस्मासुर की कथा में शिव की निन्दा करके पुनः विषपान कथा में—**'आप ही विष्णु आदि के ईश्वर हैं'**, [ऐसा कहा]। यह कथन परस्पर विरुद्ध ही है।

'विना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती' यह श्रुति का [वचन है]। और **'इस संसार में ज्ञान के सदृश पवित्र नहीं है'** यह स्मृति (=गीता) का [वचन है]। ऐसा होने पर **'भक्ति ही मोक्षदायिनी है'** यह कथन वेदादि शास्त्रों से विरुद्ध ही है।

इसलिए भागवत नाम के इस कुग्रन्थ का कर्ता मूर्ख ही है। इस कारण सुख चाहने वालों को कभी इस प्रमत्तगीत भागवत की कथा कहना और श्रवण नहीं करना चाहिये, यही सिद्धान्त है। जो लोग लोभ से सुनाते हैं, और जो मूर्ख होने से सुनते हैं, वे निश्चय ही नरक में पड़ेंगे। जो इस प्रमत्तगीत भागवत को सुनाते और सुनते हैं, वे सब पाखण्डी हैं, इसलिए

---

४१. भागवत १०.२२.१७-२०॥ ४२. भागवत १०.८८ अध्याय॥
४३. भागवत ८.७.२१-३७॥ ४४. गीता ४.३८॥ ४५. भाग० ११.१४.१८-२५॥

भागवतस्याध्ययनमध्यापनं श्रवणं च नरकगमनमेव। किं बहुना लेखेन, एतावतैव वेदितव्यं युष्माभिः। एवमेव—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरश्च[४६]

इत्यादिश्लोकैर्निर्मितमिदं भागवतं सर्वमशुद्धमिति।

कथं तर्हि श्रीधरादिभिरशुद्धस्योपरि टीका कृता? अज्ञानात्। कुत एतदज्ञानत्वं तेषु श्रीधरादिषु? न ज्ञातमशुद्धं तैः अतोऽज्ञानत्वमेव।

'सत्यं परं धीमहि' इत्यत्र शिष्याभिप्रायं बहुवचनम् **इत्युक्तवान् प्रमत्तः श्रीधर इति। शिष्यास्तु युष्मदि वर्तन्ते, कुतोऽभिप्रायस्तत्रायातः? एकोऽपि ब्रूयादेव** 'अहं ब्रवीमि', 'वयं ब्रूमो' **वा अस्मदो द्वयोश्च**[४७] **इति व्याकरणसूत्रात्। अतोऽशुद्धमेतत् 'शिष्याभिप्रायं बहुवचनम्' इति।**

अन्यकृतमिति न शङ्कनीयम् **इत्युक्तं श्रीधरेण।** 'प्राप्तौ सत्यां निषेधः'

वे महापातकी हैं। जिस वोपदेव ने इस भागवत को कहा (=रचा) वह भी पाखण्डी और महापातकी है। इसलिए इस प्रमत्तगीत भागवत का अध्ययन, अध्यापन, कथन, श्रवण करना नरक-गमन का कारण है। बहुत लिखने से क्या, इतने से ही आप लोगों को जान लेना चाहिये। इसी प्रकार **'जन्माद्यस्य०'** आदि श्लोकों से बनाया गया यह भागवत सारा ही अशुद्ध है।

तो श्रीधर ने इस अशुद्ध [भागवत] पर कैसे टीका लिखी? अज्ञान से। उन श्रीधरादि में यह अज्ञान कैसे [जाना जाए?] यह अशुद्ध है, ऐसा उन्होंने नहीं जाना, इससे अज्ञान ही है।

'सत्यं परं धीमहि'—इसमें **'शिष्यों के अभिप्राय से बहुवचन है'** ऐसा प्रमादी श्रीधर ने कहा है। शिष्यों का निर्देश 'युष्मद्' से होता है, [इसलिए] उनका अभिप्राय कहाँ से आया? [अर्थात् उनके अभिप्राय से 'धीमहि' में बहुवचन कैसे हो सकता है?] एक व्यक्ति भी कह सकता है—'मैं कहता हूँ' अथवा 'हम कहते हैं' **अस्मदो द्वयोश्च** (=अस्मद् शब्द से दो और एक में बहुवचन का प्रयोग होता है), इस व्याकरण-सूत्र के नियम से। इसलिए 'शिष्यों के अभिप्राय से बहुवचन है' कहना अशुद्ध ही है।

'यह भागवत अन्यकृत है (व्यासकृत नहीं है), ऐसी शङ्का नहीं

---

४६. भागवत १.१.१॥ ४७. अष्टाध्यायी १.२.५९॥

अतोऽन्यकृतमेव।

नायं श्रीधरनामा। कस्तर्हि? दरिद्राधरनामैवास्ति। कुतः? मूर्खत्वात्। किं बहुना लेखेन। श्रीधरादीनां ज्ञानमेव नास्ति वेदादिषु इति स्थालीपुलाकन्यायवल्लेखनं कृतमस्माभिः। तद् युष्माभिर्वेदितव्यम्—सर्वं भागवतमशुद्धमिति।

ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णाः, ब्रह्मचारिगृहिवनिसंन्यासिन आश्रमाश्च ज्ञातव्याः। एषां वेदेषु मनुस्मृतौ च धर्मा उक्ताः। एभ्यो ये विरोधिनस्ते पाषण्डिन एव। किंलक्षणास्ते? चक्राद्यङ्कनकेवलोर्ध्वपुण्ड्रकाष्ठमालाधारिणः। तप्तमुद्रोर्ध्वपुण्ड्रे द्वे नरकवाससाधने। तस्मात् त्याज्यमनघैर्द्विजैर्नरकभीरुभिरिति जाबालिः—

विभूतिधारणं त्यक्त्वा त्यक्त्वा रुद्राक्षधारणम्।
मां मा पूजय विश्वेशं शिवलिङ्गरूपिणम्॥

इत्याह विष्णुपुराणे।

करनी चाहिए' ऐसा श्रीधर ने लिखा है। **'प्राप्ति होने पर ही निषेध किया जाता है'** इस न्याय से अन्यकृत ही [भागवत है, ऐसा जानना चाहिए]।

यह [भागवत का टीकाकार] **श्रीधर** (=लक्ष्मी=विद्या का धारण करने वाला) नाम वाला भी नहीं है, अपितु दरिद्राधर (=दारिद्र्य=मौर्ख्य का धारण करने वाला) नाम वाला ही है। क्यों? मूर्ख होने से। बहुत लिखने से क्या? श्रीधरादि को वेदादि के विषय में ज्ञान ही नहीं है, यह हमने स्थालीपुलाक न्याय से लिखा है। इसलिए आप लोगों को जानना चाहिए कि सारा भागवत ही अशुद्ध है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण, तथा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ये चार आश्रम जानने चाहियें। इनके धर्म वेदों तथा मनुस्मृति में कहे हैं। उनके जो विपरीत हैं वे पाखण्डी ही हैं। उनके क्या लक्षण हैं? चक्र आदि से शरीर के दागने, ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक और काठ (=तुलसी आदि) की माला धारण करने वाले। गरम चक्र आदि से मुद्रा करना (दागना) और ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाना नरक-गमन के साधन हैं। इसलिए नरक से डरने वाले श्रेष्ठजनों द्वारा ये त्याज्य हैं। ऐसा जाबालि ने—'विभूति का धारण छोड़कर तथा रुद्राक्ष का धारण छोड़कर मुझ

'यज्ञो वै विष्णुः'[४८] **इति श्रुतेर्यज्ञकर्ता वैष्णवो नान्यः।**

बृहन्नारदीये पुराणे धर्मभगीरथसंवादे भगीरथं प्रति धर्मराज-वाक्यम्—

यस्तु संतप्तप्रशङ्खादिलिङ्गाङ्किततनुर्नरः।
स सर्वयातनाभागी चाण्डालः कोटिजन्मसु॥

एतल्लक्षणाः पाषण्डिनः ये तु पाषण्डिमतविश्वासिनस्तेऽपि पाषण्डिनः।

पाषण्डिनो विकर्मस्थान् बैडालव्रतिकान् शठान्।
हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥[४९]

इत्याह मनुः। अत एव वाङ्मात्रेणापि पाषण्डिभिस्सह व्यवहारो न कर्तव्यः।

पाषाणादिमूर्तिपूजनं पाषण्डिमतमेव। कुत एतत्? वेदादिभ्यो

शिवलिङ्ग रूपी विश्वेश की पूजा कर' ऐसा विष्णुपुराण में कहा है।

'यज्ञ ही विष्णु है' ऐसा श्रुति का कथन होने से यज्ञ करने वाला ही वैष्णव (=विष्णुभक्त) है, अन्य नहीं।

बृहन्नारदीय पुराण में धर्म-भगीरथ के संवाद में भगीरथ के प्रति धर्मराज का वाक्य है—**जो अत्यन्त तपाए हुए शंख आदि से अङ्कित शरीर वाला मनुष्य है, वह सर्व दुःखों का भागी करोड़ों जन्म तक चाण्डाल होता है।** इसलिए इस प्रकार के चिह्नों वाले पाखण्डी हैं। और जो पाखण्डियों के मत के विश्वासी हैं, वे भी पाखण्डी हैं।

'पाखण्डियों, बुरे कर्म करने वालों, बैडालव्रतवालों, शठों, कुतर्कियों और बगुलाभक्तों का वाणीमात्र से भी सत्कार न करे' ऐसा मनु ने कहा है। इसलिए वाणीमात्र से भी पाखण्डियों के साथ व्यवहार नहीं रखना चाहिए।

पाषाणादि मूर्तियों का पूजन पाखण्डी मत ही है। क्यों? वेदादि से विरुद्ध होने से।

'जो वाणी से नहीं कहा जाता, जिससे वाणी बोलने में समर्थ होती है, उसे ही तू ब्रह्म जान। जिसकी उपासना करता है यह नहीं

---

४८. शतपथ १३.१.८.८॥ ४९. मनुस्मृति ४.३०॥

विरोधात्।

यद् वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ [१]
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्। तदेव०॥ २॥[५०]
यत्प्राणेन न प्राणते येन प्राणः प्रणीयते। तदेव०॥ ३॥[५१]

इत्यादिश्रुतिभ्यः। अत एव पाषाणादिकृत्रिममूर्तिपूजनं वृथैव।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।[५२]

इति भगवद्गीतावचनात्।

किं बहुना लेखेन, एतावतैव सज्जनैर्वेदितव्यं विदित्वाऽऽ-चरणीयमेव।

दयानन्दसरस्वत्याख्येन स्वामिना निर्मितमिदं पत्रं वेदितव्यं विद्वद्भिरिति। शुभं भवतु वक्तृभ्यश्श्रोतृभ्यश्च।

है।'

'जो मन से नहीं विचारा जाता, जिससे मन विचारने में समर्थ होता है, उसे ही [तू ब्रह्म जान]।

'जो प्राणवायु से जीवित नहीं होता, जिससे प्राण गति करता है, उसे ही [तू ब्रह्म जान]।

इत्यादि श्रुतियों से [विरुद्ध है]। इसलिए पाषाण आदि की कृत्रिम मूर्तियों की पूजा व्यर्थ है।

'मूर्ख लोग अव्यक्त' (—अप्रकट रहने वाले) मुझको व्यक्त (प्रकट—हुआ—शरीर-धारण किया हुआ) मानते हैं' इस भगवद्गीता के वचन [के विरोध] से भी।

बहुत लिखने से क्या? इतने से ही सज्जनों को जान लेना चाहिए और जानकर [उनके अनुसार] आचरण करना चाहिए।

दयानन्द सरस्वती नाम के स्वामी ने यह [विज्ञापन] पत्र बनाया है, ऐसा विद्वानों को जानना चाहिए। वक्ताओं और श्रोताओं के लिए

---

५०. केनोपनिषद् १.४५॥ ५१. केनोपनिषद् १.१॥
५२. गीता ७.२४॥

वेदोपवेदवेदाङ्गमनुस्मृतिमहाभारतहरिवंशपुराणानां वाल्मीकि-निर्मितस्य रामायणस्य चाध्यापनमध्ययनं कर्तव्यं कारयितव्यं च। एतेषामेव श्रवणं कर्तव्यमिति।

—०—

कल्याण हो।

वेद, उपवेद, वेदाङ्ग, मनुस्मृति, महाभारत, हरिवंशपुराण आदि और वाल्मीकि-निर्मित रामायण का पठन-पाठन करना-कराना चाहिए, और इन्हीं का श्रवण करना चाहिये।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितस्य भागवतखण्डनस्य युधिष्ठिरमीमांसकविहित आर्यभाषानुवादः समाप्तः ॥